प्रथम अध्याय

कवि व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.1 प्रस्तावना

प्रथम अध्याय 'कवि व्यक्तित्व एवं कृतित्व' के अंतर्गत मैंने अपने अध्ययन विषय 'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' के रचनाकारों के जीवन-व्यक्तिव और साहित्यिक क्षेत्र में उनके अवदान का विश्लेषण किया है। जहाँ एक ओर 'रामचरितमानस' के रचयिता युग के महानतम महापुरुष और राम-काव्य रचना के प्रजापति गोस्वामी तुलसीदास के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व की अभिव्यंजना है वहीं दूसरी तरफ 'सप्तकाण्ड रामायण' के रचयिता, पूर्वोत्तर भारत के अद्वितीय प्रांत असम के माणिक मोती, पूर्वोत्तर राम-काव्य शिरोमणि एवं अप्रमादी कवि की आख्या से विभूषित महाकवि माधव कंदली के जीवन और कृतित्व की झाँकियाँ प्रस्तुत हैं। गौरतलब है कि 'सप्तकाण्ड रामायण' की रचना माधव कंदली ने स्वयं ही सात कांडों में की थी। परंतु समय के व्यवधान में इस मूल रचना का आदि और उत्तर कांड लुप्त हो गया और जिसे माधव कंदली को समर्पित करने के उद्देश्य से शंकरदेव तथा माधवदेव ने आदि और उत्तर कांड की रचना स्वयं कर के पुनः इसे 'सप्तकाण्ड रामायण' बनाया। अतः मेरे अध्ययन का विषय 'सप्तकाण्ड रामायण' होने के कारण युग के इन दो महानतम रचनाकारों- शंकरदेव तथा माधवदेव के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर भी मैंने यहाँ प्रकाश डाला है।

1.2 तुलसीदास

जल के भीतर प्रवेश कर जल को पैरों तल से रौंदकर अगर हम अपना गागर भरेंगे तो जल हमें गंदा ही मिलेगा। शीतल और पवित्र जल प्राप्त करने के लिए हमें शांत चित्त होकर, धीमे से, बिना उथल-पुथल किए जल

भरने का प्रयत्न करना होगा । इससे जल गंदा भी नजर नहीं आयेगा और शीतल एवं पवित्र जल भी मिल जाएगा ।

किसी भी महान कवि और उसके काव्य की उपयोगिता उसकी सामाजिक आवश्यकता से भी आंकनी जरूरी है । कई सारी आलोचनाओं में तथा कई सारे साहित्यिक महानुभावों के शब्दों में मैंने देखा है कि कबीर को तुलसी से श्रेष्ठ ठहराया गया है । कोई भी रचना छोटी या बड़ी नहीं होती, उसकी सामाजिक उपयोगिता ही उसे उसके युग में महान तथा श्रेष्ठ काव्य स्रष्टा के रूप में स्थापित करती है । कबीर का काव्य तत्कालीन परिस्थितियों से लड़कर खड़े होकर जीने की प्रेरणा देता है । उनका काव्य उनके युग की तत्कालीन परिस्थियों की जरूरत पर लिखा गया था । परंतु तुलसी का काव्य उन आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है जो एक सुंदर और सात्विक समाज की नींव है, जो समाज को एक सुंदर संस्कृति और मानव जाति को एक महान और सार्थक उद्देश्य भी देता है ।

विद्वान आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में बड़ी ही सुंदर और प्रभावशाली बात कही है-

> भक्तों के भी दो वर्ग थे । एक तो भक्ति के प्राचीन स्वरूप को लेकर चला था; अर्थात प्राचीन भागवत संप्रदाय के नवीन विकास का ही अनुयायी था और दूसरा विदेशी परंपरा का अनुयायी, लोकधर्म से उदासीन तथा समाज व्यवस्था और ज्ञान-विज्ञान का विरोधी था । यह द्वितीय वर्ग जिस घोर नैराश्य की विषम स्थिति में उत्पन्न हुआ, उसी के सामंजस्यसाधन में संतुष्ट रहा । उसे भक्ति का उतना ही अंश ग्रहण करने का साहस हुआ जितने की मुसलमानों के यहाँ भी जगह थी । मुसलमानों के बीच रहकर इस वर्ग के महात्माओं का भगवान के उस रूप पर जनता की भक्ति को ले जाने का उत्साह न हुआ, जो अत्याचारियों का दमन करने वाला

> और दुष्टों का विनाश कर धर्म को स्थापित करने वाला है। इससे उन्हें भारतीय भक्ति मार्ग के विरुद्ध ईश्वर के सगुण रूप के स्थान पर निर्गुण रूप ग्रहण करना पड़ा, जिसे भक्ति का विषय बनाने में उन्हें बड़ी कठीनता हुई।(शुक्ल 2015:09)

आचार्य शुक्ल इस के और आगे लिखते हुए कहते हैं-

> प्रथम वर्ग के प्राचीन परंपरावाले भक्त वेदशास्त्रज्ञ तत्वदर्शी आचार्यों द्वारा प्रवर्तित संप्रदायों के अनुयायी थे। उनकी भक्ति का आधार भगवान का लोकधर्मरक्षक और लोकरंजक स्वरूप था। इस भक्ति का स्वरूप नैराश्यमय नहीं है; इसमें उस शक्ति का बीज है जो किसी जाति को फिर से उठाकर खड़ा कर सकता है। सुर और तुलसी ने इसी भक्ति के सुधारस से सींचकर मुरझाते हुए हिन्दू जीवन को फिर से हरा किया।...तुलसीदास जी ने भगवान का लोकव्यापारव्यापी मंगलमय रूप दिखाकर आशा और शक्ति का अपूर्व संचार किया। अब हिन्दू जाति निराश नहीं है।(शुक्ल 2015:10)

अतः यह स्पष्ट है कि तुलसीदास का दृष्टिकोण जितना व्यापक था उनका साहित्य भी उतना ही महान है। तुलसी का साहित्य वर्तमान और भविष्य दोनों की आवश्यकताओं की नींव पर लिखा गया महान काव्य है। यह सिद्ध है कि तुलसी एक भविष्य द्रष्टा कवि थे। वे जानते थे कि भविष्य में राम-काव्य और इस काव्य में निहित गुण मानव मात्र का पथ प्रदर्शन करेंगे। उन्हें पता था कि राम-काव्य का प्रत्येक गुण, उसकी मर्यादा, पति-पत्नी धर्म, पिता-पुत्र धर्म, माता-पुत्र धर्म, राजा का धर्म, प्रजा के प्रति कर्तव्य, भाई-भ्राता का धर्म, सेवक-स्वामी का धर्म, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य इत्यादि का ज्ञान समाज की आवश्यकताओं का आधार स्तम्भ बन कर

इन्हें मार्ग दिखाने में पूर्ण रुप से सहायक बनेंगे । इस सबके बिना एक सुंदर समाज की तथा उस समाज में न्यायपूर्ण व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

1.2.1 जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

महाकवि और भविष्य द्रष्टा, काव्य-भाषा के प्रकांड पंडित गोस्वामी तुलसीदास का जीवन, व्यक्तित्व और उनकी रचनाएँ युग की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करता है । प्राचीन काल से ही हमारे भारत देश के ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं तथा मनीषियों ने समाज के कल्याण के लिए अपने जीवन को तथा अपने समस्त कर्मों को समाज और लोक-कल्याण के लिए समर्पित कर दिया है । इन संत-महात्माओं की एक यह भी विशेषता रही है कि इन्होंने समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को जितना अधिक समझा है, उसका निर्वाह जिस तन्मयता के साथ किया है उतना कहीं और देखने को नहीं मिलता । परंतु इनकी महानता केवल इनके समर्पण तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि ये निष्काम कर्म की परिधी तक भी पहुँच जाती है जहाँ अपने कर्तव्य कर्म की छाप और अपनी कीर्ति का समाज में गुणगान हो, यह इन्हें अभीष्ट नहीं था । इसका सीधा अर्थ यही है कि इन संत महात्माओं ने जो कुछ भी किया है उनमें अपने हितों की चिंता गौण रूप में ही रखी है । इन संत महात्माओं ने बड़े-बड़े और महान साहित्य की सृष्टि की है परंतु अपने विषय में कोई गाथा नहीं लिखी । अपनी कीर्ति का आप बखान नहीं किया । हाँ इनकी तकलीफ़ों और पीड़ाओं का वर्णन कहीं-कहीं अवश्य हमें देखने को मिल जाता है । परंतु उन दो-टूक बातों को केवल पृष्ठभूमि और अपने अन्तर्मन में निहित भक्ति का उद्घाटन और अपने प्रभू के प्रति दैन्य निवेदन ही इनका परम लक्ष्य रहा है ।

अतः ऐसे महात्माओं की उपलब्धियाँ और इनके जीवन और व्यक्तित्व की खोज करना एक दुरूह कार्य सा है । इनके बारे में जानने और प्रकाशित करने के लिए हमें अंतःसाक्ष्य और बहि:साक्ष्य का सहारा ही लेना

होगा । बहि:साक्ष्य की सबसे बड़ी दुविधा यह है कि इनकी खोज इतनी पुरानी और जनश्रुतियों पर आधारित कल्पना मिश्रित तथा थोड़ी धूमिल होती हैं, जो कि पूर्णतया विश्वास योग्य नहीं होती और अंत:साक्ष्य में इन महान साहित्यकारों ने सारे समाज की आवश्यकताओं और परिस्थितियों का चित्रण करते हुए भी अपनी छाप बहुत कम जतायी है ।

ऐसे ही अंत:साक्ष्य और बहि:साक्ष्य के आधार पर महात्मा गोस्वामी तुलसीदास के जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत करने की चेष्टा यहाँ पर की गयी है ।

1.2.2 जन्म परिचय

महात्मा गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त के विषय को लेकर लंबे समय से ही विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है । जहाँ एक ओर 'मूल गोसाई-चरित' के प्रणेता बेनीमाधवदास ने सं 1554 माना है, वहीं रघुवरदास द्वारा रचित 'तुलसीचरित' ग्रंथ में भी तुलसीदास का जन्म सं 1554 ही स्वीकार किया गया है । शिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंह सरोज' ग्रंथ में तुलसीदास का जन्म संवत 1583 रखा है । तुलसी साहब द्वारा रचित 'घट रामायण' में संवत 1589 स्वीकार किया गया है । डॉ॰ जार्ज ग्रियर्सन तथा पं॰ रामगुलाम द्विवेदी ने भी संवत 1589 को ही स्वीकार किया है ।

इन सभी विद्वानों के विचारों को देखने पर सं 1589 अधिक तर्क संगत लगा जो कि पूरी तरह गणना और तिथि अनुयायी भी प्रतीत होता है । इस संवत के पक्षधरों में कई विद्वान आते हैं । डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त ने भी सं 1589 को ही महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म वर्ष स्वीकार किया है ।

अतः कहा जा सकता है कि किसी भी रचनाकार का प्रादुर्भाव अपने-आप में एक युगांतकारी घटना है और उसकी साहित्यिक देन एक नए युग के निर्माण में सहायक होती है। इतने वर्षों के उपरांत यह जान पाना पूर्णतया अंसभव सा है कि किस तिथि को इन महान आत्माओं का जन्म हुआ था। ये प्रयास केवल तत्कालीन उनपर किए गए गवेषणा पर आधारित है। परंतु इसके मध्य कवि की महानता और उनका अभूतपूर्व कार्य अधिक महत्वपूर्ण रह जाता है।

1.2.3 जन्म-स्थान

तुलसीदास के जन्म वर्ष की ही तरह उनके जन्म स्थान को लेकर भी विविध मत और विवाद प्रचलित है। महाकवि के जन्म-स्थान के नाम पर विशेष रूप से,- हाजीपुर, तारी, काशी, राजापुर (बाँदा) तथा तीन अन्य राजापूर, अयोध्या और सोरो भी प्रचलित है। परंतु इनमें भी सोरो तथा राजापुर में सबसे ज्यादा विद्वानों का समर्थन तथा मतभेद रहा है। 'मूल गोसाईं-चरित, 'तुलसीचरित, 'अयोध्याकाण्ड' की हस्तलिखित प्राचीन प्रति तथा व्याप्त जनश्रुतियों में गोस्वामी जी का जन्म स्थान राजापुर बताया गया है। यहाँ 'राजापुर' के समर्थन में शिवसिंह सेंगर तथा रामगुलाम द्विवेदी भी आते हैं। इसके विपरीत गौरीशंकर द्विवेदी, लाला सीताराम, डॉ॰ रामदत्त भरद्वाज, रामनरेश त्रिपाठी तथा अन्य विद्वान 'सोरो' अर्थात 'सूकर खेत' को मानने के पक्षधर हैं।

उपर्युक्त वाद-विवाद के बाद अभी भी किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कठीन-सा प्रतीत होता है। परंतु तथ्यों की प्रामाणिकता की दृष्टि से विचार करने पर 'राजापुर' 'सोरो' के स्थान पर ज्यादा ग्रहणीय प्रतीत होता है।

गोस्वामी तुलसीदास के निर्वाण का काल भी विवादास्पद रहा है। इनके निर्वाण का कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध ना होते हुए भी जनश्रुति के आधार पर संवत 1680, श्रावण शुक्ल 3 शनिवार तथा सं. 1680

की श्रावण कृष्ण प्रचलित है। अतः विचार करने पर सं 1680 की श्रावण बदी तीज को महाकवि तुलसीदास का महाप्रयाण हुआ ठहरता है।

1.2.4 कुल-परिवार एंव नाम

तुलसीदास ने अपनी बाल्यावस्था के दुखों का करुणामय चित्रण भी कहीं-कहीं पर अवश्य किया है। इन्हीं दो टूक वर्णनों और जनश्रुतियों के आधार पर इनके वंश, जन्म तथा माता-पिता का परिचय प्राप्त हो सका है। महाकवि युगद्रष्टा गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं 'रामचरितमानस', 'विनय-पत्रिका', 'दोहावली', 'कवितावली' आदि में अनेक स्थान पर वंश, माता-पिता तथा गुरु आदि के बारे में अंतःसाक्ष्य के रूप में कुछ वर्णन मिलता है। जनश्रुतियों में प्रचलित कथाओं में तुलसीदास के बचपन का नाम 'रामबोला' था। कई स्थानों पर इन्होंने 'रामबोला' नाम का भी प्रयोग किया है। यह नाम मूलत: इनकी रामभक्ति और मुख में सदैव राम नाम का उच्चारण करने के फलस्वरूप दिया गया प्रतीत होता है। एक स्थान पर जनश्रुति प्रचलित है कि जन्म के समय इनके दाँत थे और पाँच वर्ष की अवस्था के बालक के अनुरूप इन्होंने 'राम' नाम का उच्चारण भी किया था। अतः इसी समय से इनका नाम 'रामबोला' पड गया।

यह इनके बाल्यकाल के पुकार का नाम ही प्रतीत होता है। बड़े होने पर इनका नाम तुलसी पड़ा और राम का दास होने पर ये तुलसी दास हुए। 'तुलसी' नाम का उच्चारण अधिकांश स्थानों पर देखने को मिलता है।

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की बाल्यावस्था की झाँकी प्रस्तुत करते हुए पद्मश्री डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने 'संत तुलसीदास' शीर्षक एक लघु एकांकी लिखी है जिसमें उन्होंने तुलसीदास की बाल्यावस्था की जनश्रुतियों

और साक्ष्यों को आधार मानकर एक कहानी रूप दिया है। उनके अनुसार "बाबा नरहरि दास ने बाल्यावस्था में ही बालक 'रामबोला' पर कृपा करके अपने संरक्षण में लिया था और उनका नामाकरण कर उन्हें 'तुलसीदास' कहा।"(शर्मा और बाजपेयी, संपा 2007:36)

'तुलसी' नाम का उल्लेख अनेक स्थानों पर तुलसीदास ने अपने अनेक रचनाओं में किया है। 'रामचरितमानस' की एक पंक्ति में यह देखा जा सकता है जहाँ अपनी दैन्यता प्रकट करते हुए गोस्वामीजी अपने को साधारण घाँस के रूप में चित्रण करते हुए कहते हैं कि उनकी तो कोई गिनती भी नहीं। राम का नाम इतना पतीत पावनकारी है कि 'राम' नाम लेते ही वे 'तुलसी' से 'तुलसीदास' हो गए और आदर का पात्र बन पाएँ। अतः कहा जा सकता है कि इनकी बाल्यावस्था का नाम 'रामबोला' था जो बाद में जाकर 'तुलसी', 'तुलसीदास' हो गया।

कहा जाता है कि तुलसीदास ब्राह्मण कुल में दुबे परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हूलसी था। आत्माराम दूबे पत्यौजा के दूबे थे। 'रामचरितमानस' के 'बालकाण्ड' में एक स्थान पर माता के बारे में थोड़ा विवरण मिलता है,-

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी।

तुलसीदास हित हिय हूलसी सी॥(तुलसीदास 2015: 53)

तुलसीदास के गुरु बाबा नरहरि दास थे। बालक निराश्रित था। इन्हें बाबा नरहरि दास ने ही आश्रय दिया तथा ज्ञान और भक्ति प्रदान किया। 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में उन्होंने स्पष्ट कहा है,-

बंदऊँ गुरुपद कंज कृपासिंधु नररुपहरि ।

महामोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर ॥(तुलसीदास 2015:19)

इसलिए अनेक स्थानों पर तुलसीदास ने गुरु की कृपा की महत्ता को प्रकाशित किया है ।

जनश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि काशी मे 15 वर्ष तक रहकर इन्होंने विभिन्न शास्त्रों, वेद-वेदांग, दर्शन इत्यादि का अध्ययन भी किया । तत्पश्चात जन्मभूमि पर वापस लौटने पर उनका आदर हुआ और वहीं के एक ब्राह्मण परिवार की पुत्री रत्नावली से उनका विवाह हुआ था । यह भी जनश्रुति प्रचलित है कि तुलसीदास अपनी पत्नी के प्रेम में आसक्त थे । इस आसक्ति का तथा इसके पश्चात की विरक्ति दोनों का ही इन्होंने अपनी रचनाओं में यथास्थान वर्णन किया है ।

1.2.5 रचनाएँ एवं उपलब्धियाँ

गोस्वामी तुलसीदास की किसी भी रचना में हमें उनके द्वारा प्रणीत काव्य ग्रंथों की सूची या वर्णन देखने को नहीं मिलता । अगर मिलता है तो बस रचनाओं में स्थान-स्थान पर उनका नाम और उनकी अपनी मार्मिक कथा इत्यादि । इतने समय पश्चात जब सभी ग्रंथों का संकलन करने की कोशिश की गई तो पाया गया कि तुलसी नामधारी व्यक्तियों के ग्रंथों का समूह उमड़ पड़ा ।

'मूल गोसाई चरित' में तेरह ग्रंथों की सूची बताई गई है । 'शिवसिंह सरोज' में रचनाओं के 49 कांड, इनमें 18 ग्रंथ आए । डॉ॰ जार्ज ग्रियर्सन ने 21 ग्रंथों का उल्लेख करते हुए 12 ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की है । उन्होंने इन्हीं 12 ग्रंथों को प्रामाणिक माना है । मिश्रबंधुओं ने भी 12 ग्रंथों की सूची को प्रामाणिक मानकर प्रस्तुत किया है । नागरी प्रचारिणी सभा के प्रयासों से 35 ग्रंथ तुलसी नामधारी कवियों के निकलते हैं । परंतु

'तुलसी ग्रंथावली' में विद्वानों द्वारा कुछ 12 ग्रंथों को ही प्रामाणिक मानकर स्वीकार किया गया है। यही ग्रंथ विद्वानों तथा इतिहासकारों द्वारा स्वीकार किए गए हैं।

(1) रामलला नहछू, (2) रामाज्ञा प्रश्न, (3) बरवै रामायण, (4) जानकी मंगल, (5) रामचरितमानस, (6) पार्वती मंगल, (7) गीतावली, (8) कृष्ण गीतावली, (9) दोहावली, (10) कवितावली, (11) विनय पत्रिका, (12) वैराग्य संदीपनी

1.3 माधव कंदली

माधव कंदली के जन्म, जीवन, रचना तथा काल के विषय में कोई सठीक और सार्थक प्रमाण नहीं मिलता है। स्वयं कविराज माधव कंदली ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'रामायण' में अपने विषय में केवल दो टूक बातों का उल्लेख किया है। इन्हीं बातों के आधार पर महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने परवर्ती काल में अपने एक पद में स्वंय को खरगोश और माधव कंदली को हस्ती कहकर माधव कंदली की प्रशंसा की है। 'रामायण' के 'उत्तरकाण्ड' में स्वयं महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने कुछ संकेतजनक बातें कही हैं। श्रीमंत शंकरदेव ने पूर्व कवि 'कविराज शिरोमणी' माधव कंदली को हस्ती कह कर अपनी दैन्यता प्रकट करते हुए वृद्ध ज्ञानी जनों से निवेदन स्वरूप में कहा हैं कि 'ज्ञानी जन उन्हें क्षमा करें, क्योंकि यह रचना करना शंकर के बस की बात नहीं है। अतः अगर रचना करते समय कोई दोष मिले तो उन्हें क्षमा करने का कष्ट करें। आगे श्रीमंत शंकरदेव कहते हैं कि पूर्व के अप्रमादी कवि माधव कंदली हैं जिन्होंने इस श्रेष्ठ काव्य 'रामायण' की रचना की,-

पूर्ब्ब कबि अप्रमादी माधव कन्दली आदि

तेहे बिरचिल रामकथा ।

हस्तीर देखिया लाद शशा येन फारे मार्ग

मोर भैल तेन्हय अवस्था ॥(दत्तबरुवा 2016:490)

रचनात्मक दृष्टि से महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने अपने को खरगोश और अप्रमादी कवि माधव कंदली को हस्ती के समान बताया है । इस बात से यह पता चलता है कि माधव कंदली निश्चित रूप से शंकरदेव के पूर्व के कवि रहे होंगे ।

1.3.1 जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व

माधव कंदली के विषय में तथा उनके जन्म, काल एवं स्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में चर्चा और शोध का विषय रहा है । परन्तु कुछ अंतः साक्ष्य रूपी प्रमाण के अतिरिक्त और कुछ भी जान पाना संभव नहीं हो सका है । डॉ॰ विजया बरुवा (राजखोवा) ने अपनी पुस्तक 'माधव कन्दलीर रामायनत लोकायत जीवन' में एक स्थान पर कहा है-

> राम-कथार चिर प्रवाहित सुंतित ऐतिहासिक स्थान लाभ करा असमिया जातीय कवि माधव कंदलि पुरनि असमिया साहित्यर एगोराकी प्रथितयसा पंडित कवि । किन्तु कवि माधव कंदलीर काल, स्थान आरु रचनाकृतिक लोई एतियाउ खेलि-मेलि आंतोंर होवा नाई ।(बरुवा 2006:04)

डॉ. लीलावती शइकिया बरा द्वारा रचित 'माधव कन्दलिर रामायनर भाषा' पुस्तक में एक स्थान पर जन्म काल के विषय में वर्णन करते हुए कहा है-

> सकलो प्राचीन कबिर दरे माधव कंदलिरो जन्म-मृत्यूर समय आरु कर्ममय तथा पारिबारिक जीवनर परिचय तेनेई धुवंलि-कुंवलि । आनकि तेऊंर जन्म, आरु कर्मभूमि संपर्कतो असमर कोनो एखन ठाईर नाम निर्दिष्टकोई उल्लेख करिब नोवारि ।(शइकीया 2016:13)

डॉ शाइलेन भराली कृत 'माधव कन्दलीर परा मामनी गोस्वामिलोई' पुस्तक में भी एक स्थान पर वर्णन है-

> माधव कंदलिर जन्म-मृत्युर समय खाटांकोई निर्धारण कोरिबपरा नहलेउ तेऊ जे शंकरदेवर आगोर कबि, सेई तथ्य आमार हातोत आसे । आन नालागे, शंकरदेवे तेऊँर "पूर्ब कवि अप्रमादी" बुलि कोई तेउर कवि-प्रतिभार प्रति गभीर श्रद्धा निबेदन करिछे । तदूपरि भाषातात्विक विश्लेषणर जरियतेउ पंडितसकले धारणा करिछे जे माधव कंदलिर रामायनर भाषा कोनो पद्धे चतुर्दस सतिकार पाछर नहय ।(भराली 2004:1-2)

इन सभी बातों को देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि माधव कंदली के विषय में उनके काव्य में कुछ थोड़े-से वर्णन मिलने के अलावा कोई और साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता ।

स्वयं माधव कंदली ने अपने नाम और काल के विषय में लिखा है कि इन्हें कविराज कहा जाता था । बराह राजा महामाणिक्य के आग्रह से ही इन्होंने 'रामायण' को लोक भाषा में छंद बद्ध करके उसे सर्वजनसुलभ और बोधगम्य बनाया है । यहाँ आगे वे कहते हैं कि उन्होंने बाराह राजा महामाणिक्य के कहने पर ही कुछ काव्य रसों का विस्तार किया है,-

कबिराज कन्दली ये आमाकेसे बुलिवय

करिलोहो सर्वजन बोध।

रामायण सुपयार श्री महामाणिके ये

बराह राजार अनुरोधे ।|

सातकाण्ड रामायण पदबन्धे निबंधिलो

लम्भा परिहरि सारोद्धत।

महामणिकर बोले काव्यरस किछु दिलो

दुग्धक मथिले येन घृत ॥(दत्तबरुवा 2016:465)

अब बात आती है 'कविराज' माधव कंदली के समय अथवा रचना काल की । इन पंक्तिओं में यह स्पष्ट है कि 'कविराज' माधव कंदली किसी बराही राजा महामाणिक्य के दरबारी कवि या आश्रयी थे । उनकी आज्ञा से ही इन्होंने सात काण्ड रामायण को लोकभाषा में छंद बद्ध कर सर्वसुलभ बनाया था ।

राजा महामाणिक्य के समय की गणना कर विभिन्न विद्वानों ने माधव कंदली के रचना काल का निर्धारण करने की सम्भवतः अच्छी कोशिश की है । इस विषय में कुल तीन महामाणिक्य राजाओं के होने का भी संकेत मिलता है । परन्तु अत्यधिक चिन्तन और मनन के पश्चात जयन्तपुर के चौदहवीं शती के कछाड़ी राजा महामाणिक्य के आश्रय में रचना करने के मत पर अनेक विद्वानों ने समर्थन जताया है । श्री नवारुण वर्मा द्वारा हिंदी भाषा में अनुदित 'माधव कन्दली रामायण' में एक स्थान पर लिखा है-जयन्तपुर के कछारी राजा महामाणिक्य के आदेश से माधव कंदली ने इस रामायण की रचना की ।(वर्मा 1979:09)

डॉ॰ शाईलेन भराली की पुस्तक 'माधव कन्दलिर परा मामनि रायसम गोस्वामिलोई' में भी एक स्थान पर उल्लेख है-

> उत्तर भारतर प्रांतीय भाषासमुहर भितरत माधव कंदलिर असमिया रामायणकेई अटाइतकोई प्राचीन बुलि धरा हय। सेईफालरपरा माथोन असमिया साहित्यते नहय, भारतीय साहित्यतो माधव कंदलिर एखन विशिष्ट आसन आसे । किन्तु माधव कंदलिर काल, स्थान आरु रचनाकृतिक लोई एतियाओ खेलि-मेलि आँतर होवा नाई । प्रथमते, माधव कंदलिये निजे 'सातकांड रामायण पदबंधे निबंधिलों' बुली कोइसे ।(भराली 2004:01)

डॉ. करबी डेका हाजरिका की पुस्तक 'असमिया साहित्यर रूप-रस' में भी एक स्थान पर कहा गया है,-

> माधव कंदली चतुर्दस सतिकार कबि बुलि कोवाई समीचीन । गतिके एई कथाउ धोरि लब पारि ये तेउंर रामायण कृतिवासी बा तुलसीदासी रामायणतकोई प्राचीन ।(हाजरिका 1986:02)

1.3.2 माधव कंदली विरचित रचनाएँ

अप्रमादी कवि माधव कंदली की दो प्रधान रचनाओं 'रामायण' और 'देवजीत' का उल्लेख मिलता है। परन्तु इन दोनों में भी 'देवजीत' पर कुछ विद्वानों को संदेह है कि यह कविराज माधव कंदली की ही पुस्तक है। कुछ विद्वानों का कहना है कि इनकी 'रामायण' और 'देवजीत' दोनों की भाषा एंव भाव व्यंजना में बहुत फर्क है। परन्तु अधिकतर विद्वानों ने तर्क और प्रमाण दोनों के साथ यह सिद्ध करने की भी कोशिश की है। 'देवजीत' में ' नरनारायण' रूप अर्थात कृष्ण और अर्जुन के माहात्म्य का वर्णन हुआ है। कृष्ण के मान की रक्षा हेतु अर्जुन अपने

ही पिता स्वर्गाधिपति इंद्र को युद्ध में हराते हैं। 'देवजीत' काव्य में कवि ने श्रीकृष्ण की महिमा तथा भक्ति का गुणगान किया है तथा भक्ति कर मुक्ति साधन की सलाह भी दी है।

माधव कंदली कृत 'रामायण' को उत्तर भारत के भाषासमूह में सर्वप्रथम, सर्वप्राचीन होने का गौरव प्राप्त है। सभी प्रादेशिक भाषाओं में रचित राम-कथा वर्णन काव्यों में माधव कन्दली कृत 'सप्तकाण्ड रामायण' का अपना विशिष्ट स्थान है। श्री नवारुण वर्मा द्वारा हिंदी भाषा में अनुदित 'असमिया माधव कन्दली रामायण' की भूमिका में लिखा गया है-

> कहा जाता है कि भारत की प्रादेशिक आर्य भाषाओं में प्रकाशित रामायणों में माधव कंदली कृत 'असमिया रामायण' सर्वप्रथम विरचित हुई है। जबकि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना सोलहवीं सदी में की, कृतिवास ने बँगला भाषा में रामायण की रचना पंद्रहवीं सदी में की, माधव कन्दली ने उससे सौ वर्ष पूर्व चौदहवीं सदी में अपनी असमिया भाषा में रामायण की रचना की।(वर्मा 1979:09)

'असमिया साहित्य निकष' में संपादक प्रो. भूपेंद्र राय चौधुरी लिखते हैं-

> शंकरदेव के पूर्ववर्ती कवियों में माधव कंदली का नाम सर्वोपरि है। बराही (कछारि) राजा महामाणिक्य के संरक्षण में माधव कंदली ने 'रामायण' का अनुवाद किया था। भारतीय प्रादेशिक भाषा में संभवतः 'सप्तकांड रामायण' (लगभग 1400ई.) ही प्रथम है। उनके सामने 'वाल्मीकि-रामायण' के अतिरिक्त कोई प्रादेशिक भाषा की कृति नहीं थी। 'रामायण' के

अनुवाद करते समय उनका स्पष्ट दृष्टिकोण था : 'वाल्मीकि कृत रामायण' का जो अर्थ अपनी बुद्धि के अनुसार समझा उसे ही संक्षेपतः पदों में रचा ।(रायचौधुरी 2006:19-20)

डॉ. सत्येंद्र नाथ शर्मा ने अपने ग्रंथ 'रामायणर इतिवृत' में एक स्थान पर स्पष्ट रूप से माधव कंदली कृत 'रामायण' को उत्तर भारतीय भाषा में प्रथम अनुदित कृति मानते हुए कहा है-

द्वादस सतिकामानरपरा आधुनिक भारतीय भाषासमूहत रामायण रचना हबलोई आरंभ हय । उत्तर भारतर भाषासमूहर भितरत असमिया भाषाते प्रथमे रामायण अनूदित हय । माधव कांदलिर रामायणर एई विषयत बिशिष्ट स्थान आसे । माधव कंदलिर रामायण केईबाटाऊ दिशरपरा माईलर स्तम्भ बुलिब पारि ।(शर्मा 2015:216)

डॉ. लीलावती शइकीया बरा द्वारा विरचित 'माधव कन्दलिर रामायनर भाषा' पुस्तक में उन्होंने भी माधव कंदली कृत 'रामायण' को प्रथम उत्तर भारतीय भाषा का काव्य कहा है । वे लिखती हैं-

कबि माधव कंदली प्रथम असमिया रामायण-रचयिता । बाल्मीकी रामायणर गौड़ीय संस्करणर आधारत 'सप्तकाण्ड रामायण' रचना करि कंदलियेई पोनते असमिया भाषात रामायण रचनार बाट मूकलि करे । उत्तर-पूब भारतर प्रादेशिक रामायनी कबिसकलर भितरत माधव कंदली सर्वप्राचीन ।(शइकीया 2016:13)

कविराज माधव कंदली ने राजा के आदेश पर संस्कृत रामायण का ही प्रादेशीक भाषा में अनुवाद कर अपनी रामायण की रचना असमिया भाषा में की थी । परन्तु इस अनुवाद में भी माधव कंदली ने कहीं भी असामंजस्य की स्थिति नहीं आने दी है । त्रैलोक्य मोहन नाथ द्वारा रचित पुस्तक 'देश आरु विदेशर रामायणी साहित्यर अध्ययन' में एक स्थान पर कहा है-

कबि माधव कंदलिये बाल्मीकि रामायणर मूल संस्कृत गौड़ीय संस्करणर अनुकरणत एई असमिया रामायण रचना करिचिल । मूल बाल्मीकि रामायणर काहिनीर परा फालरि काटि लगे... कंदलिये निजर रुचि आरु असमिया समकालीन समाजर उपयोगिकोई रामायणखन रचना करिसे । एई रचनात तेऊं निजे कोनो प्रक्षिपता करा नाई बुलि घोषणा दिसे ।(नाथ 2013:163)

सुंदरकांड में एक स्थान पर कविराज माधव कंदली ने वाल्मीकि की प्रशंसा करते हुए कहा है,-

बाल्मीकि ये महाऋषि रामायण प्रकाशिल

संसारत स्त्रजिल अमृत ।

आक शुनि नरलोक कलित सद्गति होक

एक शनि होवे कृतकृत्य ।।(दत्तबरुवा 2016:330)

कविराज के अनुसार वाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना कर संसार में अमृत का सृजन किया है । इस अनुपम ग्रन्थ का स्मरण मात्र कर के ही इस घोर कलियुग में मनुष्यों को सद्गति प्राप्त होता है । अतः कविवर माधव कंदली ने स्वयं संस्कृत भाषा में रचित 'रामायण' और कवि महर्षि वाल्मीकि की प्रसंशा की है तथा अपने काव्य को उनकी कथा के आधार पर ही पोषण दिया है । माधव कंदली कृत सात काण्ड रामायण का आदि काण्ड और उत्तर काण्ड कालक्रम के बिच गुम हो चुका था । तत्पश्चात महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने अपने प्रिय शिष्य माधवदेव को 'आदिकांड' रचने को कहा तथा स्वयं वे 'उत्तर काण्ड' रचकर इस 'रामायण' को पुनः सप्त काण्डी रामायण बनाया और माधव कंदली कृत 'रामायण' को पुनः सर्वसुलभ कर दिया ।

1.4 श्रीमंत शंकरदेव

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव एक ऐतिहासिक पुरुष थे । उनका आविर्भाव रूढ़िवादी संकीर्ण एंव व्यभिचारी मानसिकता वाले समाज व्यवस्था का प्रतिकार कर समाज में समरसता लाने तथा मानवीय हृदय में करुणा, दया, परोपकार तथा एकेश्वर के प्रति भक्ति स्थापित कर समाज का उद्धार करने के लिए ही हुआ माना जाना चाहिए । श्रीमंत शंकरदेव ने तत्कालीन समाज में चल रहे अमानवीय कृत्य को देखा था । पशु बलि तो उस समय साधारण-सी बात थी, लोग तो नर बलि भी करते हुए अपराध बोध न कर इसे भक्ति एंव श्रद्धा का ही अविभक्त एक रूप मानते थे । ये हाल तो ब्राह्मणों और उच्च वर्ग समाज का था । शासक वर्ग भी इन रूढ़िवादी व्यवस्था के पोषक थे । श्रीमंत शंकरदेव को इन सभी व्यवस्था और लोगों से लड़कर भक्ति का प्रचार कर समाज का भी उद्धार करना पड़ा था । परन्तु उन्होंने कभी भी हार नहीं माना और एक सुन्दर और सुसंस्कृत समाज के स्वप्न को सार्थक करने का प्रयास किया ।

1.4.1 जीवन, व्यक्तित्व एंव कृतित्व

विभिन्न ऐतिहासिक प्रमाणों, इतिहास ग्रंथों और उनमें प्रचलित कथाओं, शंकरोत्तर काल में रचित कई सारे ग्रंथों, रचनाओं, गुरु-चरित काव्यों तथा स्वयं शंकरदेव वर्णित कुछ बातों के आधार पर श्रीमंत शंकरदेव के जीवन और व्यक्तित्व का एक प्रामाणिक एंव सर्वसम्मत आधार हमारे समक्ष उपलब्ध होता है । इनमें कुछ प्रचलित जैसे- रामचरण, दैत्यारि ठाकुर, भूषणद्विज, वैकुण्ठ द्विज, रामानन्द द्विज तथा अनिरुद्ध दास आदि के अतिरिक्त आधुनिक काल में भी इन चरितों के आधार पर कई सारे ग्रंथों का प्रणयन होता आ रहा है जिनमें

शंकरदेव का जीवन वृत्त मिलता है । इन ऐतिहासिक प्रमाणों तथा सामग्रीयों में शंकरदेव सहित उनके पूर्व कुल परम्परा के पूर्वोत्तर भारत में प्रतिष्ठित होने का भी प्रमाण मिलता है ।

1.4.2 कुल एंव वंश परम्परा

विद्वानों के मतानुसार चौदहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में राज्य कर रहे राजा दुर्लभ नारायण के आग्रह पर गोडेश्वर धर्म नारायण, बंगाल के अधिपति ने उनके साथ मित्रता कर राजा दुर्लभनारायण को सात घर ब्राह्मण तथा सात घर कायस्थ परिवार भेंट किया । कहा जाता है कि ये ब्राह्मण तथा कायस्थ परिवार प्रथमतः उत्तर प्रदेश में अवस्थित कन्नौज राज्य के कायस्थ एंव ब्राह्मण वंश परंपरा के अंश थे । कन्नौज(उत्तर प्रदेश) से गौड़ देश (बंगाल) तथा गौड़ देश से कामता राज्य में बटद्रवा या बरदोवा में बसाए गए थे । इन्हीं सात घर कायस्थों में शंकरदेव के पूर्व पुरुष चंडिबर (देवीदास) भी आए थे । वंशलता के प्रमाण के अनुसार चंडिबर के पुत्र भुइया कायस्थ राजधर, राजधर के पुत्र सूर्यवर, सूर्यवर के पुत्र भुइया कास्थ्य शिरोमणि कुसुम्बर, तथा इन्हीं कुसुम्बर के पुत्र श्रीमंत शंकर देव हुए थे । इन सभी कायस्थ परिवारों का राजा बड़ा सम्मान किया करते थें । इसीलिए ये कायस्थ भुइया शिरोमणि बने ।

1.4.3 जन्म, माता-पिता एंव शिक्षा-दीक्षा

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के जन्म दिवस के विषय में प्रमाण उपलब्ध नहीं है । केवल प्रयाणकाल तथा शंकरोत्तर काल में रचित ग्रंथों के आधार पर गवेषणा कर के यह निष्कर्ष निकाला गया है कि श्रीमंत शंकरदेव लगभग 119 वर्ष तक जीवित रहे और उनका वैकुण्ठ प्रयाण 1490 शकाब्द अर्थात सन 1568 ई. में हुआ था । इस प्रकार श्रीमंत शंकरदेव का जन्म वर्ष 1371 शकाब्द या 1449 ई. में हुआ, सर्वमान्य हो गया । इस तिथि

को ही सभी विद्वानों ने स्वीकार किया । इस सम्बन्ध में श्री महेश्वर नेओग द्वारा लिखित उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ' श्री श्री शंकरदेव' में कहा है-

> पूब भारतर प्रथम नब-बइष्नब-धर्म प्रवर्तक, असमिया जातीयता, संस्कृति आरु साहित्यर प्राण-प्रतिष्ठाता जगद्गुरु महापुरुष श्री शंकरदेव अवतीर्ण हय 1371 शकत मध्य असमर आलिपूखूरीत; आरु प्राय सकुरी बसर भू-भारतत थाकि असमिया जाति आरु समाजक नतून भेटित थापोना करि, 1490 शकत पूबर बेहारत बैकुंठ-प्रयाण करे ।(नेओग 2016:19)

शंकरदेव के पिता कुसुम्बर भुइया, शिरोमणि भुइया तथा कायस्थ थे । कुसुम्बर भुइया की प्रथम पत्नी सत्यसंध्या के गर्भ से भगवान शंकर के आशीर्वाद से असम राज्य के मध्य में स्थित बरदोवा (नगाँव जिले के आलिपुखुरी) गाँव में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव का जन्म हुआ था । बाल्यकाल में ही शंकरदेव के माता-पिता का निधन हो गया था । ततपश्चात दादी खेरसूती ने ही इनका पालन-पोषण किया । बारह वर्ष तक का जीवन शंकरदेव का खेलकूद में ही बीता । लगभग तेरह वर्ष की उम्र में उन्हें महेंद्र कन्दली की पाठशाला में भेजा गया था । यह भी प्रचलित है कि शंकरदेव ने केवल वर्ण-ज्ञान होने के पश्चात ही बिना मात्रा सीखे एक बहुत ही गंभीर कविता की रचना कर डाली थी, जिसकी भाव व्यंजना उनके भावी महान रचनाशीलता का परिचय दे देती है ।

शंकरदेव बचपन से ही ब्रह्मपुत्र नद में तैरना, योगाभ्यास करना आदि में रुचि रखते थे । यही कारण है कि उनहोंने लगभग 119 वर्ष तक का एक स्वस्थ जीवन जीया है । कम समय में ही लगभग 21 वर्ष की अवस्था तक शंकरदेव ने व्याकरण, ज्योतिष, विज्ञान, इतिहास, पुराण, महाभारत, श्रुति-स्मृति तथा साहित्य आदि का अध्ययन कर लिया था । गुरु गृह में ही रहते हुए 22 वर्ष तक की अवस्था आते-आते शंकरदेव ने 'मार्कण्डेय-

पुराण' के आधार पर 'हरिश्चंद्र उपाख्यान' की रचना कर दी थी । शिक्षा समाप्त कर अपने घर वापस लौटकर शंकरदेव ने अपने पैतृक साम्राज्य भुइया शिरोमणि का दायित्व अपने शास्त्र ज्ञानी कन्धों पर लिया । इस दायित्व के भार के मध्य ही में वे शास्त्र-ज्ञान-चर्चा भी किया करते थे । लगभग इसी बीच शंकरदेव का विवाह सूर्यवती से हुआ था । पत्नी सूर्यवती से तीन वर्ष उपरान्त इन्हें एक पुत्री (मनु) प्राप्त हुई । परन्तु दुर्भाग्यवश लगभग नौ महीने पश्चात पत्नी सूर्यवती ने शंकरदेव का साथ छोड़ परलोक को प्रयाण किया ।

पुत्री मनु के विवाह के उपरान्त लगभग 1403 शकाब्द अर्थात 1481 ई. सन के आसपास ३२ वर्ष की अवस्था में प्रथम तीर्थयात्रा के लिए शंकरदेव ने अपने सारे कार्य भार और दायित्व को परिवार के ऊपर पुनः सौंपकर अपने संगी साथियों को लेकर निकल पड़े । प्रथम तीर्थ यात्रा के दौरान महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने बद्रीकाश्रम, हरिद्वार, प्रयाग, काशी, पुष्कर, वृन्दावन, जगन्नाथपुरी, श्री क्षेत्र आदि तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया था । इसी बीच बद्रीकाश्रम में ही "मन मेरी राम चरणहि लागु, तई देखना अंतक आगु ॥" गीत की रचना शंकरदेव ने की थी । तत्पश्चात लगभग 12 वर्षों तक तीर्थ भ्रमण करने, साधु संग करने, ज्ञान-भक्ति की महिमा सुनने गाने के उपरान्त शंकरदेव 1415 शकाब्द अर्थात 1493 ई. में वापस अपने घर लौट आते हैं | तीर्थयात्रा से वापस आने के पश्चात परिवार के आग्रह करने पर शंकरदेव ने पुनः कालिन्दी नामक कन्या से 1425 शकाब्द यानी 1503 ई. में विवाह किया ।

1.4.4 शंकरदेव कृत रचनाएँ तथा भक्ति प्रचार

पारिवारिक दायित्वों का पालन करते हुए भी शंकरदेव शास्त्र की चर्चा तथा समाज में समरसता लाने और भगवत-भक्ति का प्रचार-प्रसार करने की इच्छा को त्याग किए बिना दृढ़तापूर्वक अपना धर्म निभाकर कार्य

करते रहे। द्वितीय बार तीर्थ भ्रमण- हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, पांचाल, चित्रकुट, गोदावरी, दण्डकारण्य आदि की यात्रा करते हुए वे जगन्नाथपुरी पहुँचे। तीर्थ भ्रमण से लौटकर ही उन्होंने पूर्ण रूप से धर्म का प्रचार करना शुरू कर दिया। कोच-कछाड़ी तथा आहोम राजाओं द्वारा धर्म प्रचार में बाधा दिए जाने पर भी वे रुके नहीं। ब्राह्मण से लेकर त्रांत्रिक साधू-सन्यासी भी उनके पीछे लगे रहे। इन सब परेशानियों के बावजूद भी शंकरदेव अपने धर्म-प्रचार तथा समाज कल्याण की भावना के प्रचार में अडिग रहे।

डॉ. नवीन चंद्र शर्मा रचित 'महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव' में उन्होंने लिखा है,-

> महापुरुष शंकरदेव स्वरूपार्थत उत्तर-पूब भारतर प्रथम बीप्लवी आरु तेउंर सेई बिप्लब सूचनार मूल लक्ष्य आसिल सामाजिक मूल्यबोधर परिवर्तन साधन करि समाज-जीवनर अभिनव मूल्ययन करा आरु ऐतिहासिक परिवर्तनर बाबे उपयूक्त परिबेश रचना करा।(शर्मा 2017:01)

डॉ. नवीन चंद्र शर्मा पुनः एक स्थान पर कहते हैं-

> आध्यात्मिक प्रसंगत महापुरुष शंकरदेवर दानर तुलना नाई। सनातन सत्यर संधान दान, आध्यात्मिक क्षेत्रत जाति-धर्मर बैशम्य निबारन आरु उपासनार क्षेत्रत श्रिंखला आरु सहजीकरण प्रचेष्टा, सबल-सूस्थ मानसिकतार सृष्टि आदियेई तेउंर उल्लेख्ययोग्य आध्यात्मिक अवदान।(शर्मा 2017:03)

इस तरह कहा जा सकता है कि उत्तर पूर्व भारत के प्रथम विप्लवी कवि शंकरदेव ने आध्यात्म और भक्ति के माध्यम से जाति-पाती के भेद भाव को दूर कर भक्ति के क्षेत्र में अनेक देववाद मत तथा तंत्र-मन्त्र साधना में फँसे मानव समाज को एकशरणीया भागवत भक्ति देकर कृष्ण और राम की भक्ति देकर समाज का उद्धार किया।

श्रीमंत शंकरदेव को असमिया ग्रन्थ का जनक भी कहा जाता है। शंकरदेव को विभिन्न भाषाओं का ज्ञान था। भारत के प्रचलित तीर्थ स्थलों में घूमने के कारण उन्हें काव्य के लिए सर्वमान्य भाषा के चुनाव का ज्ञान था। यही कारण है कि उन्होंने तत्कालीन भारत की प्रमुख भाषा ब्रज तथा असम की प्रमुख असमिया भाषा को मिलाकर एक नवीन भाषा का सृजन किया, जिसे ब्रजबुली या ब्रजावली की संज्ञा दी।

1.4.5 रचनाएँ

श्रीमंत शंकरदेव ने संस्कृत, असमिया, ब्रजावली तीनों भाषाओं में अपनी रचनाएँ की हैं। इनके द्वारा प्रणीत प्रामाणिक रचनाओं का विवरण इस प्रकार है,-

असमिया में रचित ग्रंथ :

(1) हरिश्चंद्र उपाख्यान, (2) रुक्मिणी हरण काव्य, (3) भक्ति प्रदीप, (4) गुण माला, (5) उत्तर काण्ड रामायण, (6) भटिमा, (7) कीर्तन-घोषा, (8) भागवत के अध्यायों का अनुवाद, (9) बरगीत,

नाट्य-काव्य :

(10) पत्नी प्रसाद नाट, (11) कालि-दमन नाट, (12) केलि गोपाल नाट, (13) रुक्मिणी हरण नाट, (14) पारिजात हरण नाट, (15) राम विजय नाट,

संस्कृत में रचित काव्य :

(16) भक्ति-रत्नाकर, (17) तोटय।

1.5 श्री श्री माधवदेव

शंकरदेव ने जिस विश्रिंखलित समाज व्यवस्था का उद्धार कर उसे सुस्थिर और सुव्यवस्थित किया था तथा धर्म प्रचार करते हुए अधर्म और पाखंड के गर्त में जाते हुए मानव जाति का उद्धार कर धर्म, संस्कृति, न्याय, प्रेम आदि के प्रति आदर को फिर से उनके ह्रदय में स्पंदित किया था। शंकरदेव का साथ देने और उनके उद्देश्य की पूर्ण पूर्ति में माधवदेव का योगदान भी सराहनीय एंव अतुलनीय है। यह पूर्ण सत्य है कि असमिया समाज का पुनरुद्धार कर सुन्दर सुव्यवस्थित संस्कृति देने में शंकर-माधव का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

केवल शंकरदेव के लिए ही नहीं वरन समस्त असमिया जाति और समाज के लिए माधवदेव का अवदान एक वरदान साबित हुआ है। शंकरदेव के वैकुण्ठ प्रयाण के पश्चात संपूर्ण वैष्णव धर्म का, एक शरणीया हरि नाम धर्म के प्रचार का दायित्व मादवदेव ने अपने कन्धों पर लेकर मानव जाति का कल्याण किया। शंकरदेव ने जिस एक शरणीया हरि नाम धर्म की नीवं विश्रिंखलित असमिया समाज में रखी, उसकी शाखाओं को माधवदेव ने ही अपने सम्पूर्ण जीवन के समर्पण के द्वारा प्रेषित किया।

शंकर और माधव का केवल धार्मिक दृष्टि से मिलन और समाज में हरि नाम धर्म के प्रचार-प्रसार तथा गुरु-शिष्य का ही सम्बन्ध नहीं था। अपितु शंकरदेव माधवदेव के पूर्वपुरुष भी भुईया वंश की ही परम्परा से सम्बंधित तथा एक ही स्थान से आकर इस पूर्वोत्तर भू-भाग में बसे थे।

1.5.1 वंश-परंपरा

प्रचलित है कि शंकर और माधव दोनों के ही पूर्व पुरुष उत्तर भारत के कन्नौज (उत्तर प्रदेश) में रहते थे। वंहा पर राजनीतिक अशांति और मुसलमान शासक वर्ग द्वारा फैलाये कुशासन और अराजकता के कारण ही दोनों के पूर्व पुरुष प्रथमतः गौड़ देश या बंगाल में आ बसे थे। बंगाल के तत्कालीन राजा बड़े ही उदार और भक्त

प्रवृति के शासक थे। उन्होंने न केवल कन्नौज से स्थानांतरित होकर बंगाल (गौड़) देश आने वाले परिवार समूहों को आश्रय दिया बल्कि राजा धर्मनारायण ने इन परिवारों को माटी, वृति आदि तक देकर उन भुइया वंश के विद्वान चंडिबर कायस्थ को कायस्थ शिरोमणी भुइया बनाकर उनका आदर भी किया था।

उसी के समकालीन कमता राज्य के शासक कामतेश्वर दुर्लभ नारायण एक शक्तिशाली राजा थे। उन्होंने राजा धर्मनारायण से युद्ध संधि में सात घर ब्राह्मण पण्डित तथा सात घर कायस्थ पण्डित देने का आग्रह किया। राजा धर्मनारायण ने ऐसा ही किया। इन्हीं सात घर कायस्थ परिवार में शंकरदेव के पूर्वपुरुष कृष्ण भुइया दोनों थे। राजा दुलर्भनारायण द्वारा ये पण्डित गण हाजों के पास लेंगा मांगुरि में ससम्मानपूर्वक बसाए गए थे। परन्तु वहाँ बाढ़ का पानी आने के कारण उन्हें वह स्थान त्यागना पड़ा। तभी चंडिबर कायस्थ वहाँ से टेम्बूवानी या बरदोवा में आकर बस गए तथा माधवदेव के पूर्वपुरुष कृष्ण भुइया भी रंगपुर जिला के धवला नदी के पास बांदुका (वर्तमान बांग्लादेश) में बस गए थे। बांदुका में ही माधवदेव के कई पूर्वपुरुषों ने निवास किया। उनके पिता गोविन्दगिरी का जन्म बांदुका में ही हुआ था। बांदुका में ही राजा प्रतापराय के एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्यरत थे। गोविंदगिरी की प्रथम पत्नी अनुशीता द्वारा बांदुका में रहते हुए ही इन्हें एक पुत्र दामोदर प्राप्त हुआ। पत्नी वियोग के पश्चात गोविन्दगिरी ने पुत्र का विवाह कर अपनी मजिंदारी पुत्र को सौंप दी तथा खुद विरक्त होकर अपने पूर्वपुरुष कायस्थ परिवार का स्मरण कर बरदोवा चले गए।

1.5.2 जन्म एवं शिक्षा-दीक्षा

बरदोवा में उनकी मुलाक़ात शंकरदेव के परिवार से होती है। शंकरदेव गोविन्दगिरी का दूसरा विवाह अपने ही कुल की कन्या मनोहरी या मनोरमा के साथ करा देते हैं। विवाह के उपरान्त गोविन्दगिरी कुछ काल

तक बरदोवा के रोउटा में ही रहते हैं। परन्तु वहाँ रहते समय ही ब्रह्मपुत्र के पूर्व में बसे आहोम राज्य, उत्तर-पूर्व में बसे सुटिया राज्य, इसी के आसपास बसे कछारी राज्य और ब्रह्मपुत्र के दोनों पार बसे भुइया वंश में संघर्ष प्रायः होता ही रहता था। इसी संघर्ष और अशांति के कारणवश गोविन्दगिरी ने बरदोवा का त्याग कर दिया तथा वहाँ से आहोम राज्य के उजीर (राज्य के एक अधिकारी) हरसिंह बरा के गृह में शरण लेते हैं। वहीं आहोम राज्य के लखिमपुर जिला के अंतर्गत, नारायणपुर के रंगाजान लेतेकुपुखुरी नामका स्थान पर हरसिंह बरा के गृह में गोविन्दगिरी की द्वितीय पत्नी मनोरमा के गर्भ से 1411 शकाब्द (सं 1489) में महापुरुष श्री श्री माधवदेव का जन्म हुआ था। कुछ वर्षों तक यहाँ रहते हुए इन्हें इस स्थान पर भिक्षाटण करके जीवन का सबसे कठिन समय बिताना पड़ा था। यह माधवदेव के बाल्यकाल जीवन का संघर्षमय काल रहा। घाघरी माझी के यहाँ पुनः इन्हें शरण मिलती है। यहाँ सुखपूर्वक रहते हुए ही गोविन्दगिरी ने पुनः एक कन्या संतान उर्वशी को जन्म दिया। माजुली में उर्वशी के लिए वर तलाश करते हुए इनकी भेंट अपने ही कायस्थ कुल के एक युवक गयपानी से होती है। शंकरदेव का अनुगामी होने के कारण इनका नाम रामदास हो गया। रामदास के साथ ही उर्वशी का विवाह हो जाता है।

माधवदेव की शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न सामने आते ही गोविन्दगिरी की पत्नी मनोरमा को बेटी दामाद के पास छोड़कर दोनों बड़े पुत्र दामोदर के पास बांदुका चले जाते हैं। लगभग बीस वर्ष होने के पश्चात माधवदेव ने बांदुका में राजेंद्र अध्यापक के टोल में शिक्षा ग्रहण करना प्रांरभ किया। अल्प समय में ही माधवदेव ने वेद, व्याकरण, गीता, भागवत, रामायण के साथ ही विभिन्न शास्त्र आदि का अध्ययन भी कर लिया था। इसी समय गोविन्दगिरी की मृत्यु माधवदेव को और झंकझोर कर रख देती है। बान्दुका में बड़े-भाई के पास पांच वर्ष रहने

के पश्चात माधवदेव पुनः माता और बहन बहनोई के पास लौटने लगते हैं। माधवदेव अपनी अस्वस्थ माता की अवस्था देखकर देवी माँ से प्रार्थना करते हुए दो सफेद बकरों की बलि देने की बात करते हैं। सफेद बकरों को खरीद लाने का कार्य बहनोई को सौंप देते हैं। परन्तु रामदास जब उक्त कार्य का विरोध कर माधवदेव को समझाने का प्रयत्न करते हैं, तो तभी माधवदेव शंकरदेव से शास्त्र तर्क करने की बात कहकर सुबह ही दोनों रवाना हो जाते हैं।

दोनों दूसरे ही दिन शंकरदेव के सम्मुख धुवाहाता बेलगुरी सत्र में उपस्थित होते हैं। तर्क करने के आवेश में आए हुए माधवदेव ने जब शंकरदेव को प्रथम बार देखा तब उन्होंने शंकरदेव के शांत, आकर्षक स्वरूप से प्रभावहित होकर उन्हें प्रणाम किया था। अपने भांजे को शास्त्र ज्ञानी जानकार शंकरदेव बहुत प्रसन्न हुए। निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग, शास्त्र धर्म और वैष्णव धर्म, हिंसा और अहिंसा, सेवा भाव आदि के ऊपर माधवदेव ने अनेक प्रश्न किए। अंत में श्रीमंत शंकरदेव ने 'श्रीमदभागवतम' का एक श्लोक प्रस्तुत किया जिससे माधव देव पूर्ण प्रभावित हुए। यहाँ यह बताने का प्रयत्न किया कि जिस प्रकार से वृक्ष की जड़ मे जल देने से उसके सम्पूर्ण अंगों-उपांगों को पोषण स्वतः ही मिल जाता है ठीक उसी प्रकार से भगवान कृष्ण की सेवा करने पर समस्त देवी-देवता गण भी तृप्त हो जाते हैं। माधवदेव ने तब निरुत्तर होकर परम् भक्त एंव ज्ञानी शंकरदेव को अपना गुरु स्वीकार कर अविवाहित रहकर आजीवन गुरु शंकर की सेवा करने का तथा वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार करने का कठीन व्रत ले लिया और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उस मिलन ने तत्कालीन असमिया समाज का एक साथ उद्धार किया। इन्होंने एक साथ मिलकर असम का साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक सभी दृष्टियों से उपकार किया था।

माधवदेव द्वारा रचित रचनाएँ कुछ इस प्रकार क्रमानुसार उल्लेखित हैं,-

काव्य :

(1) नामघोषा, (2) भक्ति रत्नावली, (3) जन्म रहस्य, (4) नाम-मालिका, (5) आदिकांड रामायण, (6) राजसूय यज्ञ, (7) बरगीत, (8) भटिमा,

झुमुरा :

(9) चोर धरा, (10) पिम्परा-गुछोवा, (11) भोजन बिहार, (12) भूमि लोटोवा, (13) अर्जुन भंजन इत्यादि।

1.6 निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामचरितमानस केवल उत्तर भारत का ही नहीं वरन समस्त विश्व साहित्य का गौरव है । तुलसीदास विरचित रामचरितमानस जनता के मानसिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, परमार्थिक आदि सभी प्रकार से उन्नति का आधार है । वहीं माधव कन्दली विरचित रामायण उत्तर भारत के भाषासमूह में सर्वप्रथम है। वाल्मीकि रामायण के आधार पर इस रामायण की रचना की गयी थी। असमिया रामायण के आदि और उत्तर कांड को श्रीमंत शंकरदेव तथा माधव देव ने पुनः लिखकर माधव कन्दली रामायण को जन-मानस तक पहुंचाया तथा साधारण जनता का आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार से उद्धार किया।